International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 03(I), July - September, 2022, pp. 63-66

काश्मीर शैव दर्शन में प्रत्यभिज्ञा का स्वरूप

विनय कुमार तिवारी*

सार

समस्त भारतीय दर्शन का प्रमुख लक्ष्य 'प्रमाता के स्वरूप' को जानना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रायः समस्त भारतीय दर्शनों में किसी न किसी रूप में प्रत्यभिज्ञा का विवेचना किया गया है। यद्यपि विभिन्न कालों उनकी चिन्तन पद्धतियाँ पृथक्–पृथक् है, परन्तु गंतव्य एक है। वह गन्तव्य है– 'प्रमाता के स्वरूप का अवबोधन। किन्तु इन विभिन्न पद्धतियों व गंतव्य में साम्य स्थापित करने वाली नियमों से पृथक काश्मीर शैव दर्शन की विचारधारा है। जहाँ साधन और साध्य, इन द्विविध रूपों में प्रत्यभिज्ञा दृष्टिगत होती है। काश्मीर शैव दर्शन, शिवात्मवादी तांत्रिक विचारधारा का एक अंग है। काश्मीर शैव दर्शन का सम्पूर्ण विचार ही प्रत्यभिज्ञा निर्मित है। यही कारण है कि चार्वाक एवं बौद्ध के अतिरिक्त जहाँ अन्य दर्शन मात्र 'स्थिर आत्मा की सिद्धि' हेतु या बौद्धों से अपने वैशिष्ट्य स्थापना हेतु प्रत्यभिज्ञा की चर्चा करते हैं, वहीं काश्मीर शैव दर्शन में विषय और विषयी दोनों प्रत्यभिज्ञा के रंग में रंगे हुए हैं। अतः शैव दर्शन में प्रत्यभिज्ञा की महत्ता को देखते हुए, उसके स्वरूप, विभिन्न स्तरों पर उसकी अवस्थिति एंव अन्य दर्शनों से उसके वैशिष्ट्य आदि का विवेचन आवश्यक है। प्रस्तुत शोधपत्र में काश्मीर शैव दर्शन के परिपेक्ष्य में 'प्रत्यभिज्ञा के स्वरूप' का विवेवचन किया गया है।

शब्दकोश : *शैवमत, काश्मीर शैवमत, प्रत्यभिज्ञा स्मृति एवं संस्कार आदि।*

प्रस्तावना

शिव की उपासना के साक्ष्य सिन्धु घाटी, वेदों, उपनिषदों महाभारत तथा पुराणों के समय से प्राप्त होता है। 'दक्षिण भारत में शैव मत ईस्वी सन् के पूर्व से ही प्रचलित था। लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में शैव मत को शैव सिद्धान्त के नाम से एक विशिष्ट दर्शन को परिष्कृत रूप दिया'।[i] डॉ. पोप ने शैव दर्शन पर बहुत अधिक विचार किया है। इस दर्शन के सन्दर्भ में उनका मत है कि 'शैव दर्शन अत्यन्त परिष्कृत प्रभावशाली और निःसन्देह भारत के समस्त दार्शनिक सम्प्रदायों में सबसे अधिक आन्तरिक रूप से मूल्यवान स्वीकार किया है'।[ii] शैव मत में शिव को परम तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इस मज के अनुसार शिव के पूर्व व पश्चात् शून्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। शिव अनादि है, अजन्मा है, निर्विकल्प है, सर्वज्ञ है आदि–आदि।

काश्मीर प्रदेश के भू–भाग में जो शैव मत विकसित हुआ, उसे काश्मीर शैव दर्शन कहा जाता है।[iii] काश्मीर शैव दर्शन को अनेक नामों से जाना जाता है। जैसे– त्रिक दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, स्पन्द दर्शन आदि। 'काश्मीर शैव दर्शन के मूल में शैवतंत्र ही है, दार्शनिक दृष्टि से शिवसूत्र ही काश्मीर शैव दर्शन का आधार ग्रन्थ है'।[iv] काश्मीर शैव दर्शन के अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों में वशुगुप्त की 'स्पन्दकारिका, सोमानन्द की 'शिवदृष्टि, उत्पलदेव की 'प्रत्यभिज्ञा कारिका, अभिनवगुप्त की 'प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी, परमार्थ सार और तन्त्रालोक आदि है। सोमानन्द ने शिवदृष्टि में 'प्रत्यभिज्ञा' को मोक्षोपाय के रूप में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से वर्णित किया है।[v] जिससे

* शोधार्थी (भारतीय दर्शन विभाग), साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन, म.प्र.।

स्पष्ट होता है कि 'प्रत्यभिज्ञा' ही काश्मीर शैव दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त है। इस मत में 'प्रत्यभिज्ञा' ही मोक्ष का साधन है, 'प्रत्यभिज्ञा' ही मोक्ष रूप है। इसी कारण काश्मीर शैव दर्शन का नाम 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' भी है। सर्वदर्शनसंग्रह के रचयिता माधवाचार्य ने इस दर्श को प्रत्यभिज्ञा दर्शन ही बताया है।

'आगमिक तंत्रों में मोक्षोपाय योगाभ्यास की आवश्यकता है। जबकि काश्मीर शैव मत में एक अन्य उपाय भी माना गया है, जिसमें योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं होती है। जिसे प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है'।[vi] इसलिए भी इस दर्शन का अन्यतम सिद्धान्त 'प्रत्यभिज्ञा' है। इसलिए शैव दर्शन में प्रत्यभिज्ञा की महत्ता को देखते हुए, उसके स्वरूप, विभिन्न स्तरों पर उसकी अवस्थिति एंव अन्य दर्शनों से उसके वैशिष्ट्य आदि का विवेचन आवश्यक है। व्युत्पत्ति की दृष्टि भारतीय दर्शन में प्रत्यभिज्ञा शब्द की विविध व्युत्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं–

- प्रति + आभिज्ञा
- प्रति + अभि + ज्ञा

इन दोनों व्युत्पत्तियाँ 'पहचान' रूप एक ही अभिप्राय की द्योतक है, परन्तु उनकी विद्या व क्षेत्र भिन्न–भिन्न है। प्रथम अर्थ जिसमें 'अभिज्ञान' पुनः प्राप्त हुआ, जो संस्कार सहकृत प्रत्यक्ष ज्ञान का एक भेद है, वह प्रत्यभिज्ञान है, इसका क्षेत्र मात्र जागतिक संदर्भ पर्यन्त परिसीमित है; जबकि द्वितीय अर्थ, प्रथम दृष्टिकोण के परि–ग्रहणपूर्वक चेतना की पुनर्प्राप्ति रूप अभिप्राय को भी अपने अर्थ में समाहित किए हुए है। यही अर्थ जीव को जगत् व उससे भी परे ले जाती है। प्रथम का सम्बन्ध भारतीय दर्शन की सभी शाखाओं से है, जबकि द्वितीय काश्मीर शैव दर्शन का विशिष्ट मत है। अभिनवगुप्त के अनुसार प्रत्यभिज्ञा में 'प्रति' उपसर्ग प्रतिप अर्थ में, 'अभि' उपसर्ग आभिमुख्य अर्थ में 'ज्ञा' धातु अवबोधन अर्थ में प्रयुक्त हुई है। साथ ही 'प्रति' व 'अभि' उपसर्गों के मध्य आनन्तर्य, अन्विति या कार्यकारणभाव रूप सम्बन्ध भी है। 'अभि' 'प्रति' की व्याख्या है, प्रति 'अभि' का प्रतिफल है। 'प्रति' बताता है कि कोई चीज बदल जाती है और 'अभि' बताता है कि बदल जाने की प्रतिक्रिया स्वरूप वह वस्तु सामने आ जाती है, उसी का ज्ञान करना है। अर्थात् पूर्व घटित का सम्मुख उपस्थित रूप में ज्ञान करना ही प्रत्यभिज्ञान है। जिसे काश्मीर शैव दर्शन की दार्शनिक शब्दावली में 'भात और भातसमान' के अनुसंधान के रूप में परिभाषित किया गया है। उदाहरण के लिए जिस देवदत्त को दिल्ली में देखा था, उसी देवदत्त को आज वर्धा में देखकर, यदि यह स्मृति हो जाए कि वह वही देवदत्त है, तो इस प्रकार का ज्ञान ही 'प्रत्यभिज्ञा' कहलाता है।

काश्मीर शैव दर्शन में प्रत्यभिज्ञा का कोषगत अर्थ है 'सही पहचान' अर्थात् अपने विस्मृत स्वरूप को पहचान लेना।[vii] जैसे– पूर्व में दृष्ट व्यक्ति को पुनः देखने पर होने वाला ज्ञान यह अमुक व्यक्ति है। 'प्रत्यभिज्ञा स्मृति और प्रत्यक्षज्ञान दोनों का समन्वित रूप है। परम तत्व में शिव शक्ति सामरस्य के समान प्रत्यभिज्ञा में स्मृति और प्रत्यक्ष का सामरस्य है। स्मृति संस्कारजन्य ज्ञान है, प्रत्यक्ष इन्द्रियसंवेदनजन्य ज्ञान है। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा पूर्व संस्कार और वर्तमान इन्द्रियसंवेदन के तदात्म्यीकरण से उत्पन्न ज्ञान है'।[viii] जैसे– किसी व्यक्ति का पूर्व ज्ञान है क्योंकि उसे भूतकाल में देखा था या उसके विषय में सुना था। वर्तमान में उस व्यक्ति का प्रत्यक्षज्ञान करते है कि यह वही व्यक्ति है जिसका हमें पूर्व ज्ञान था। इस प्रक्रिया में जब हम प्रत्यक्षज्ञान करते हैं तो हमारे मन में स्थित उसके पूर्व ज्ञान के संस्कार उद्भुत होते हैं और इन संस्कारों का प्रत्यक्ष संवेदनों से तदात्म्यीकरण होता है। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा पूर्व संस्कारों एवं वर्तमान संवेदनों के तदात्मीयकरण से उत्पन्न ज्ञान है। प्रो. चन्द्रधर शर्मा अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन में प्रत्यभिज्ञा के चार चरण का उल्लेख किया है।[ix] जो इस प्रकार हैं–

- **प्रथमः** प्रत्यभिज्ञात वस्तु या व्यक्ति का पूर्वज्ञान होना आवश्यक है। पूर्वज्ञान के लिए उस वस्तु या व्यक्ति का पूर्व–दृष्ट होना आवश्यक नहीं है, उसका पूर्व–श्रुत होना पर्याप्त है। हमने या तो उसे देखा हो या उसके रूपगुणादि के विषय में सुना हो।
- **द्वितीयः** उस पूर्व ज्ञात वस्तु या व्यक्ति का वर्तमान में हमारे सम्मुख उपस्थित होना और हमें उसका प्रत्यक्षज्ञान होना आवश्यक है।
- **तृतीयः** उस पूर्व ज्ञात वस्तु या व्यक्ति का हमारे मन में स्थित संस्कारों का वर्तमान में उसे देखकर उद्भुत होना आवश्यक है।

- **चतुर्थः** इन पूर्व ज्ञान के उत्थित संस्कारों का वर्तमान में उत्पन्न प्रत्यक्ष ज्ञान से तदात्म्यीकरण आवश्यक है। इस तदात्म्यीकरण से उत्पन्न ज्ञान कि यह वस्तु या व्यक्ति वही है जिसका हमें पूर्व ज्ञान था। यही प्रत्यभिज्ञा की प्रक्रिया है।

पाश्चात्य दर्शन व मनोविज्ञान में प्रत्यभिज्ञा के लिए 'रिकॅग्नीशन' शब्द का प्रयोग मिलता है। परन्तु प्रत्यभिज्ञा के पर्याय रूप में प्रयुक्त होने पर भी 'प्रत्यभिज्ञा व रिकॅग्नीशन' की दार्शनिक परिधि में समानता नहीं है। सतीशचन्द्र चटर्जी के अनुसार 'प्रत्यभिज्ञा' शब्द का प्रयोग द्विविध सन्दर्भों में होता है।[x]

- प्रथम– किसी वस्तु के स्वभाव ज्ञान कराना।
- द्वितीय– कसी वस्तु को पूर्वज्ञात रूप में ज्ञान करना।

उपर्युक्त 'प्रत्यभिज्ञा' शब्द के प्रयोग का प्रथम सन्दर्भ 'तत्वमीमांसीय' है, जबकि द्वितीय 'ज्ञानमीमांसीय' है। 'प्रत्यभिज्ञा' शब्द की इन द्विविध व्याख्याओं में से 'रिकॅग्नीशन' शब्द का प्रयोग मात्र द्वितीय संदर्भ में ही किया जाता है। अर्थात् 'प्रत्यभिज्ञा' शब्द का 'ज्ञानमीमांसीय' विवेचन, सामान्यतः अन्य भारतीय दर्शनों के सन्दर्भ में संगत है, परन्तु काश्मीर शैव दर्शन के सन्दर्भ में यह उचित नहीं है। कारण यह कि काश्मीर शैव दर्शन में 'प्रत्यभिज्ञा' शब्द का प्रयोग उक्त द्विविध संदर्भों में होता है। काश्मीर शैव दर्शन में 'प्रत्यभिज्ञा' के जो चार दृष्टान्त– सोऽयं चैत्रः, नृपस्य पुत्रः, कामिन्यः नायकः तथा ईश्वरोऽहम् मिलते हैं, उनमें से प्रथम दो दृष्टान्त 'रिकॅग्नीशन' से सम्बद्ध हो सकते हैं। जैसे– घटादि शब्द घटादि पदार्थ से स्वीकृत होकर ही व्यवहार में प्रयुक्त होता है। यहाँ 'शब्द और अर्थ' का उक्त एकात्म्यीकरण ही प्रत्यभिज्ञा है।

अस्तु कहा जा सकता है कि 'प्रत्यभिज्ञा' में वस्तु या व्यक्ति के पूर्व ज्ञान की दशा में और वर्तमान ज्ञान की दशा में ताात्विक एकता का स्फुरण होता है, जिसमें जो दानों दशाओं में सामरस्य है। इस प्रकार 'प्रत्यभिज्ञा बौद्धिक ज्ञान के साथ–साथ अपरोक्ष ज्ञान भी है। जिसे इस दर्शन में पौरूष ज्ञान कहा जाता है। पूर्व ज्ञान की दशा और वर्तमान ज्ञान की दशा बौद्धिक ज्ञान है जबकि दोनों दशाओं में ताात्विक एकता का स्फुरण अर्थात् ज्ञात तत्व एक ही है अपरोक्षानुभूति'।[xi] जैसे– कोई युवती किसी व्यक्ति के गुणें को सुनने मात्र से उसे प्रमपत्र लिखकर विश्वासपात्र द्वारा उसके पास भेजती है और मिलने का आग्रह करती है। व्यक्ति युवती से मिलने आता है तो वह युवती व्यक्ति को साधारण जन मान लेती है किन्तु जब विश्वासपात्र द्वारा व्यक्ति का परिचय दिया जाता है तो युवती व्यक्ति को पहचान लेती है और आनन्दविभोर हो जाती है।

जहाँ वेदान्त दर्शन में महावाक्यों का ज्ञान लक्षणा द्वारा होता है, वहीं काश्मीर शैव मत में तत्वमसि आदि महावाक्यों का ज्ञान भी प्रत्यभिज्ञा द्वारा प्रकाशित होता है। जैसे– जीवात्मा माया के कारण अपूर्ण ज्ञान से स्वयं को अपूर्ण शक्तिसम्पन्न ससीम आत्मा मान लेता है तथा अपने शिव स्वरूप को भूल जाता है। जब गुरू उस जीवात्मा को बताते हैं कि तू ही शिव है। जीवात्मा उसका श्रवण, मननादि से उत्पन्न शिव की अनुग्रह, गुरू की दीक्षा और स्वयं की साधना से अपरोक्ष अनुभूति या प्रत्यभिज्ञा से या पौरूष ज्ञान में परिणत हो जाता तो जीव अपने वास्तविक शिव स्वरूप को पूर्ण सच्चिदानन्द को चित्त शक्ति के पूर्ण आनन्द को प्राप्त कर लेता है, यही मोक्ष है। काश्मीर शैव दर्शन वेदान्त दर्शन की भांति जीवन मुक्त को स्वीकार करता है। इस प्रकार पौरूष ज्ञान द्वारा अज्ञान रूपी आणवमल के दूर हो जाने से सदेह अवस्था में भी मुक्ति संभव है, क्योंकि जीवन मुक्त सब आभासों को शिवरूप देखता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'प्रत्यभिज्ञा' काश्मीर शैव दर्शन का ज्ञानमीमांसीय सिद्धान्त के साथ ही साथ तत्वमीमांसीय सिद्धान्त भी है। इसलिए 'प्रत्यभिज्ञा' ही काश्मीर शैव दर्शन का महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय सिद्धान्त है। इसका कारण है कि प्रत्यभिज्ञा जो ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र से सम्बद्ध एक साधारण से प्रत्यय है, काश्मीर शैव दर्शन ने इसी प्रत्यभिज्ञा को समस्त दार्शनिक संरचना का आधार बनाया है। शैव दार्शनिक इसे एक समन्वयवादी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करतें हैं, जिसमें सब कुढ समाविष्ट है। इसके पूर्व व इसके पश्चात् प्रत्यभिज्ञा के अतिरिक्त कुछ नहीं। यही कारण है कि काश्मीर शैव दर्शन में ज्ञान क्षेत्र हो या परमार्थ का या साधना का, या मोक्ष का....। इन सबका मूल, सबका फल प्रत्यभिज्ञा ही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

i डॉ. राधाकृष्णन, 2016. भारतीय द"र्शन (भाग– 2), राजपाल एण्ड सन्ज, नई दिल्ली, पृ॰ 633.

ii डॉ. राधाकृष्णन, 2016. भारतीय द"र्शन (भाग– 2), राजपाल एण्ड सन्ज, नई दिल्ली, पृ॰ 633.

iii पाण्डेय, संगम लाल, 1973. भारतीय द"र्शन का सर्वेक्षण, सेण्ट्रल पब्लि"िंग हाउस, प्रयागराज, पृ॰ 358.

iv मिश्र, जगदी"ा चन्द्र, 2016. भारतीय द"र्शन, चौखम्बा सुरभारती प्रका"ान, वाराणसी, पृ॰ 673.

v पाण्डेय, संगम लाल, 1973. भारतीय द"र्शन का सर्वेक्षण, सेण्ट्रल पब्लि"िंग हाउस, प्रयागराज, पृ॰ 358.

vi पाण्डेय, संगम लाल, 1973. भारतीय द"र्शन का सर्वेक्षण, सेण्ट्रल पब्लि"िंग हाउस, प्रयागराज, पृ॰ 358.

vii सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, 2012. भारतीय दर्शन की रुपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ॰ 175.

viii शर्मा, चन्द्रधर, 2013. भारतीय द"र्शन(आलोचन एवं अनु"ीलन), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ॰ 341.

ix शर्मा, चन्द्रधर, 2013. भारतीय द"र्शन(आलोचन एवं अनु"ीलन), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ॰ 341.

x Chatterjee, Satischandra, 2015. Nyaya Theory of Knowledge, Rupa Publications, New Delhi, p. 226 - 29.

xi शर्मा, चन्द्रधर, 2013. भारतीय द"र्शन(आलोचन एवं अनु"ीलन), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ॰ 342.

❖◆❖